|| श्रीहरिः ||
वसुदेवसुतं देवं कंसचाणूरमर्दनम् |
देवकीपरमानन्दं कृष्णं वन्दे जगद्गुरुम् ||

|| गीता पढ़ें, पढ़ायें, जीवन में लायें ||

|| श्रीमद्भगवद्गीता विवेचन सारांश ||

अध्याय 15: पुरुषोत्तमयोग

2/2 (श्लोक 7-20), शनिवार, 01 फ़रवरी 2025

विवेचक: गीता विशारद डॉ आशू जी गोयल

यूट्यूब लिंक: https://youtu.be/plMvGhPN4P8

जीवात्मा के स्वरूप

सनातन परम्परा के अनुसार भजन, देशभक्ति गीत, हनुमान चालीसा पाठ, दीप प्रज्वलन, गुरु वन्दना एवं प्रारम्भिक प्रार्थना के साथ आज के सत्र का आरम्भ हुआ। श्रीभगवान् की अतिशय मङ्गलमय कृपा से हम सब लोगों का ऐसा सद्भाग्य जाग्रत हुआ है जो हम लोग अपने मानव जीवन को सफल और सार्थक करने के लिए गीता जी के स्वाध्याय, मनन एवं पठन-पाठन में लग गए हैं। उनके सूत्रों को अपने जीवन में कैसे उतार सकते हैं इसको भी जानने का प्रयास कर रहे हैं। मानव जीवन का प्रमुख लक्ष्य भगवद् प्राप्ति ही है, इस दृष्टि को थोड़ा-थोड़ा समझने का भी प्रयास कर रहे हैं, परन्तु हमें यह भी विश्वास होना चाहिए कि हमने गीता जी को नहीं चुना है अपितु हम गीता जी पढ़ने के लिए चुने गए हैं।

गीता जी पढ़नेवाला इस लोक में भी सर्वत्र विजयी होता है और परलोक में भी उत्तम गति को प्राप्त करता है। गीता जी एकमात्र ग्रन्थ है जो युद्ध क्षेत्र में कहा गया। किसी नदी के किनारे, किसी सभा में, सत्सङ्ग में, गुफा में नहीं कहा गया। विषम परिस्थितियों में समराङ्गण में कहा गया है।

अर्जुन कोई साधारण पुरुष नहीं हैं। वे पूरे जीवन में एक भी युद्ध नहीं हारे, हजारों युद्ध किये। स्वयं भगवान् महादेव के साथ युद्ध कर उन्हें प्रसन्न किया। इन्द्र सहित समस्त देवताओं की सेना को परास्त किया है। उनमें इतना देवत्व है। सशरीर स्वर्ग में जाने के लिए कठोर तपस्या की। देवताओं के सिंहासन पर बैठने का गौरव प्राप्त किया, वह अधिकार प्राप्त किया। जीवन में इतना अध्ययन किया है। इतनी वृद्धों की सेवा की है। अर्जुन के जीवन काल में कहीं भी ऐसा नहीं दिखता कि उन्होंने कभी नीति का उल्लङ्घन किया हो। अहङ्कार का प्रदर्शन किया हो, किसी से ऊँची आवाज में बात की हो। किसी को नीचा दिखाने का प्रयास किया हो। ऐसा अर्जुन ने कभी भी नहीं किया। फिर भी वे भ्रमित हैं। वे मोह में आ गए। वे बोलते-बोलते दूसरे अध्याय में बोल गए।

शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम्॥2.7॥
मैं शिष्य बनकर आपके सामने खड़ा हूँ। हे केशव! आप गुरु बनकर मेरा कल्याण करो। श्रीभगवान् ने अर्जुन को निमित्त बनाकर गीता का उपदेश आरम्भ किया। वास्तव में अर्जुन के लिए गीता कहने की आवश्यकता नहीं थी। अर्जुन तो भगवान् श्रीकृष्ण के सबसे प्रिय थे। वे उनकी बात भी मानते थे। उनका इतना आदर भी करते थे। अर्जुन ने एक अक्षौहिणी सेना को छोड़कर निहत्थे श्रीभगवान् का चयन किया।

श्रीभगवान् अर्जुन को सङ्केत भी करते तो अर्जुन खड़े हो जाते। सन्तों, महात्माओं का कहना है कि श्रीभगवान् ने अर्जुन को निमित्त बना कर समस्त मानव जाति के कल्याण के लिए गीता का उपदेश दिया।

सर्वोपनिषदो गावो दोग्धा गोपालनन्दनः।
पार्थोवत्सः सुधीर्भोक्ता दुग्धं गीतामृतं महत्।

श्रीभगवान ने पार्थ को बछड़ा बनाकर और सारे उपनिषदों रूपी गायों को दुहकर, श्रीमद्भगवद्गीता रूपी गीता अमृत को सारी मानव जाति के लिए प्रकट कर दिया।

बारहवें अध्याय का चिन्तन हमने देखा। पन्द्रहवें अध्याय का चिन्तन हम देख रहे हैं जो थोड़ा कठिन है, ज्ञानयोग का है। उल्टे वृक्ष की पिछले सप्ताह हमने स्लाइड देखी और भी कुछ ज्ञान की स्लाइड समझने का प्रयास करेंगे। बड़े आनन्द का अध्याय है। पुरुषोत्तम योग है, सभी अध्यायों का राजा है।

आज सातवें श्लोक के चिन्तन से आरम्भ करेंगे।

इस श्लोक को देखते ही उन महापुरुष का चिन्तन स्वमेव ही आ जाता है। इस शताब्दी के सर्वश्रेष्ठ महापुरुषों में इनका नाम है। गीता भवन में सतत सत्सङ्ग द्वारा ज्ञान का प्रवाह करने वाले **परम श्रद्धेय ब्रह्मलीन स्वामी रामसुखदास जी महाराज।**

15.7

ममैवांशो जीवलोके, जीवभूतः(स्) सनातनः।
मनः(ष्) षष्ठानीन्द्रियाणि, प्रकृतिस्थानि कर्षति।।7।।

इस संसार में जीव बना हुआ आत्मा (स्वयं) मेरा ही सनातन अंश है; (परन्तु वह) प्रकृति में स्थित मन और पाँचों इन्द्रियों को आकर्षित करता है (अपना मान लेता है)।

विवेचन- मानस में इसकी रूपक एक चौपाई आई है।

सुनहु तात यह अकथ कहानी। समुझत बनइ न जाइ बखानी॥
ईस्वर अंस जीव अबिनासी। चेतन अमल सहज सुख रासी॥1॥

स्वामी जी कहते हैं श्रीमद्भगवद्गगीता is theoretical science and (थियोरेटिकल साइंस) Ramayan is applied science.

श्रीमद्भगवद्गीता में परमात्मा ने जो उपदेश किया, श्रीरामायण में भगवान् श्रीराम के जीवन चरित्र में उसको चरितार्थ किया।

एक स्थान पर परमात्मा बोलते हैं और दूसरे स्थान पर उस बात को (action) व्यवहार में लाते हैं। वे करके बताते हैं। जो श्लोक श्रीमद्भगवद्गीता में कहते हैं वही रामचरितमानस में (applied science के रूप में) मिलते हैं।

हे अर्जुन! जो कुछ भी तुम इस संसार में देखते हो, वह और तुम भी मेरा ही अंश हो। मुझसे अलग नहीं हो। तुम मेरे ही हो। तुम मेरा ही अंश हो। इस देह में जीवात्मा मेरा ही अंश है। जो मन और पाँचो इन्द्रियों को आकर्षित करता है।

दो शब्द होते हैं एक पुरातन और एक सनातन। पुराण पुरातन कहे गये जो बहुत पुराने हैं, लाखों साल पुराने। उनकी कालावधि को जाना नहीं जा सकता। जिनका काल भी जाना नहीं जा सकता, वे हो जाते हैं पुराण, अर्थात् बहुत पुराने।(Ancient) कभी पहली बार हुआ है, ऐसा पहले हुआ ही नहीं।

(It is from always and forever) वह है सनातन। इसकी किसी ने स्थापना नहीं की। यह हमेशा से था, हमेशा से है और हमेशा रहेगा। श्रीभगवान् कहते हैं, जो यह जीव है, वह सनातन है क्योंकि मैं भी सनातन हूँ।

जो वृक्ष हमने देखा, उसकी जड़ परमात्मा हैं। वही उसका तना होगा। वही उसकी पत्तियाँ होगी, वही उसकी शाखा होगी। वही फलों के रूप में, फूल के रूप में बढ़ता है। वैसे ही परमात्मा प्रकट हो जाते हैं, अलग-अलग रूप में, अलग-अलग जीवों के रूप में, पशु-पक्षियों में, योनियों में, नदियों में, पहाड़ों में परमात्मा ही विद्यमान हैं, उनके अतिरिक्त कुछ नहीं। वह एक ही हैं तो अलग-अलग क्यों प्रतीत होते हैं। शास्त्रकारों ने इसके लिए एक अलग प्रकार का उदाहरण दिया। महाकाश, मठाकाश और घटाकाश। ये तीनो बातें जिसे हम स्लाइड के द्वारा समझेंगे।

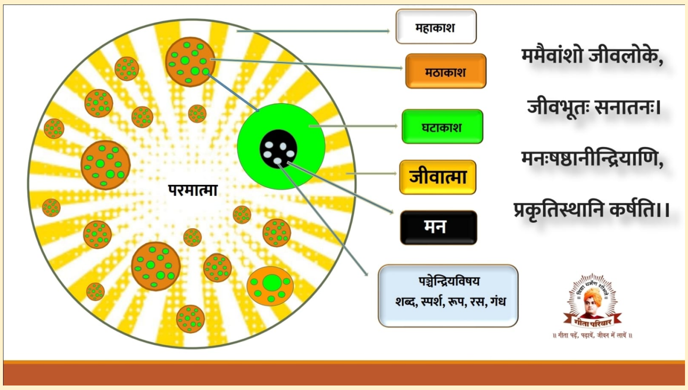

महाकाश अर्थात् परमात्मा, मठाकाश अर्थात् ब्रह्माण्ड और घटाकाश अर्थात् शरीर। आकाश जो मेरे घर के बाहर है और घर के अन्दर है या मेरे कमरे के अन्दर का है, वह अलग-अलग है कि एक ही है। ध्यान में आएगा कि एक ही है। हमारे घर के बाहर और भीतर का आकाश एक ही है। आकाश एक ही होने पर भी अलग-अलग है क्योंकि उसका तापमान अलग-अलग है। तो आकाश एक होने पर भी अलग-अलग है कि नहीं।

आप एक घड़ा लीजिए, उसको नदी में डुबो दीजिए। अब जो उस घड़े में जल है वह नदी का ही जल है तो घड़े का और नदी का जल एक ही है। घड़े के अन्दर का जल नदी के जल से अलग है कि नहीं। नदी में विद्यमान होने पर भी अलग होता है।

इसी प्रकार सम्पूर्ण परमात्मा जो पीला, सफेद दिख रहा है, इसमें सफेद भाग को मान लीजिए महाकाश। सम्पूर्ण परमात्मा का चैतन्य जिसे सुप्रीम पावर कहते हैं, अनन्य शक्ति, निराकार शक्ति जो सम्पूर्ण है। गोलों में घेरा बना दिया, यह अनन्त है। (there cannot be any boundary) उसके अन्दर मठाकाश हो गया अलग-अलग ग्रह, ब्रह्मा हो गए, अलग-अलग ब्रह्माण्ड हो गए। ब्रह्माण्ड को मठाकाश समझ लीजिए। ब्रह्माण्ड में अलग-अलग जीव हो गए, यूनियन हो गई इसे आप घटाकाश समझ लीजिए।(green) हरा भाग इस घटकाश को चैतन्य देने वाला जीवात्मा।

यह शरीर हम मर गए तो भी वैसा का वैसा ही रहता है। नाक, कान, हाथ, पैर सब वैसे के वैसे ही रहते हैं। लेकिन चेतन तत्त्व शरीर में से निकल गया। वह प्राण, जीवात्मा इसमें से निकल गए। सब कहते हैं इस शरीर को फूँक दो, अब यह किसी काम का नहीं। उससे पहले तो रामदेव जी की बढ़िया-बढ़िया वाली क्रीम चेहरे पर लगाकर उसको चमकाते हैं। च्यवनप्राश, पौष्टिक आहार लेकर शरीर का ध्यान रखते हैं पर एक बार प्राण निकले कि जल्दी से जल्दी इस शरीर का दाह संस्कार करना पड़ता है।

जीव में वह चेतनता, जीवात्मा और इस घटाकाश के साथ मन सहित पाँच इन्द्रियाँ विद्यमान हैं। इन पाँच इन्द्रियों के पाँच विषय- शब्द, रूप, गन्ध, स्पर्श और रस के कारण यह मन जीवात्मा को शरीर से बाँध देता हैं। मन और पाँचो इन्द्रियों के जो संस्कार हैं वे अनन्त करोड़ों-करोड़ों जन्मों से हमारे साथ चिपके चले आ रहे हैं। बच्चों में भी देखा है किसी को मीठा पसन्द है किसी को नमकीन अच्छा लगता है। क्यों अच्छा लगता है? दो भाई-बहनों में यह भेद क्यों होता है? एक को मीठा पसन्द आता है एक को नमकीन पसन्द आता है, एक को कोई रङ्ग पसन्द होता है तो दूसरे को दूसरा रङ्ग पसन्द होता है। एक को कोई बात अच्छी

लगती है, दूसरे को दूसरी बात अच्छी लगती है। ये अलग-अलग होने का कारण हमारे पूर्व जन्मों के संस्कार हैं। करोड़ों-करोड़ों जन्मों में हमने जो कुछ भी कर्म किए हैं। उन कर्मों से जो भी आसक्तियाँ निर्माण हुई, उसका सङ्ग निर्माण हुआ, उन सङ्ग की आसक्तियाँ कई जन्मों तक हमारे साथ चलती हैं। जब तक हमें मोक्ष प्राप्त नहीं हो जाता तब तक अनन्त जन्मों के संस्कार हमारे साथ चलने वाले हैं।

भगवान आदि शङ्कराचार्य जी कहते हैं, कब तक यही करते रहोगे?

पुनरपि जननं पुनरपि मरणं, पुनरपि जननी जठरे शयनम्।
बार-बार नौ महीने तक उल्टे लटके रहते हैं। (Come out you can be liberated.) तुम इससे बाहर आ सकते हो। प्रश्न मन में आएगा यह कैसे हो सकता है? जीवात्मा श्रीभगवान् का ही अंश है। फिर यह संस्कार कैसे चलते होंगे। जड़ और चेतन के सिद्धान्त के अनुसार जड़ और चेतन आपस में नहीं मिल सकते, जैसे तेल और पानी आपस में नहीं मिल सकते। जब मिल नहीं सकते तो एक जीवात्मा, एक शरीर से दूसरे शरीर में प्रयाण करती है तो संस्कार एक शरीर से दूसरे शरीर में कैसे जाते होंगे?

15.8

शरीरं(यँ) यदवाप्नोति, यच्चाप्युत्क्रामतीश्वरः।
गृहीत्वैतानि संयाति, वायुर्गन्धानिवाशयात्॥15.8॥

जैसे वायु गन्ध के स्थान से गन्ध को (ग्रहण करके ले जाती है), ऐसे ही शरीरादि का स्वामी बना हुआ जीवात्मा भी जिस शरीर को छोड़ता है, (वहाँ से) इन (मन सहित इन्द्रियों) को ग्रहण करके फिर जिस (शरीर) को प्राप्त होता है, (उसमें) चला जाता है।

विवेचन:- हमारे मन में कई बार यह प्रश्न आता है कि आत्मा का वाहक क्या है? इसकी गति क्या है? कैसे हम एक शरीर से दूसरे शरीर को प्राप्त करते हैं? क्या होता होगा तब? कैरी बैग होता है क्या, जिसमें हमें डालकर ले जाया जाता है? सच्ची बात तो यह है कि न जाता है, न पकड़ता है, न छोड़ता है। चेतन पदार्थ का कोई उदाहरण होता ही नहीं है। जीवात्मा के अलावा कोई चेतन है ही नहीं। जो भी उदाहरण देते हैं, हम जड़ के देते हैं।

श्रीभगवान् कहते हैं कि हे अर्जुन! जब वायु चलती है, तो जिस ओर से निकलती है वहाँ की गन्ध को साथ ले जाती है। कूड़ेघर के पास से चलेगी तो कूड़े की गन्ध वायु में आने लगेगी। हम रेलगाड़ी से यात्रा करते हैं। यदि यात्रा मार्ग में आस-पास शक्कर बनाने की फैक्ट्री हो। ट्रेन उस स्थान से निकलेगी तो हमें फैक्ट्री से निकलने वाले रसायन की गन्ध आने लगेगी। अगर सुन्दर बगीचा है और वहाँ से हवा आ रही होगी तो हमें बगीचे की ख़ुशबू आने लगेगी। कहीं रातरानी का फूल खिला है तो उसकी गन्ध आने लगती है, लेकिन वह गन्ध वायु के माध्यम से ही एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाती है। साथ होने पर भी वायु उसको ग्रहण नहीं करती, थोड़ी दूर जाने पर वह छूट जाती है। कोई भी गन्ध वायु में सदा के लिए विद्यमान नहीं रह सकती।

पानी में लाल रङ्ग घोल दिया, तो वह पानी में बहुत समय तक के लिए रह सकता है। गुलाल को वायु में उछालिए। गुलाल वायु को सदा के लिए लाल नहीं रख सकती। किसी भी पदार्थ को हम वायु से चिपका नहीं सकते। वायु का गुण है, वह कुछ भी ग्रहण नहीं करता। **It doesn't accept anything it can carry everything.** वायु प्रकाश को भी लेकर जाती है, गन्ध को भी लेकर जाती है। **It is totally detached from everything.** जल से उस रङ्ग को अलग नहीं किया जा सकता, परन्तु वायु के साथ ऐसा नहीं है। कितना भी रङ्ग गुलाल उड़ा लें, पर सदा के लिए वायु को रङ्गीन नहीं किया जा सकता। जल का स्वभाव है ग्रहण करना। अग्नि भी ग्रहण कर लेती है। पृथ्वी भी ग्रहण कर लेती है।

आत्म तत्त्व भी ऐसा है। वह किसी को ग्रहण नहीं करता लेकिन साथ ले जा सकता है। ऐसे ही हमारे अनेक जन्मों के पाप, पुण्य, वासनाएँ हैं। हमारी कामनाएँ, हमारे संस्कार, हमारी पसन्द, नापसन्द, ये सब पैकेट के रूप में बन्द कर उस जीवात्मा के साथ, एक शरीर से दूसरे शरीर में, प्रयाण करती हैं। आत्मा न तो उसे पकड़ती है, न छोड़ती है। वायु की तरह ही हमारे संस्कार विषयाकर्षण हैं। यही बाँधने वाले हैं और इसी के कारण अनेक जन्म होते हैं। श्रीभगवान् कह रहे हैं - हे अर्जुन! यह विषय-आकर्षण बड़ा प्रभावशाली है।

15.9

श्रोत्रं(ञ्) चक्षुः(स्) स्पर्शनं(ञ्) च, रसनं(ङ्) घ्राणमेव च।
अधिष्ठाय मनश्चायं(व्ँ), विषयानुपसेवते॥15.9॥

यह (जीवात्मा) मन का आश्रय लेकर ही श्रोत्र और नेत्र तथा त्वचा, रसना और घ्राण –(इन पाँचों इन्द्रियों के द्वारा) विषयों का सेवन करता है।

विवेचन:- घट बदलते रहते हैं, ये शरीर बदलते रहते हैं। घट बनते रहते हैं, बिगड़ते रहते हैं। जैसे रोज़ हम वस्त्र बदलते रहते हैं। सत्तर-अस्सी साल में शरीर बदल लेते हैं। कुछ योनियाँ तो कुछ मिनट की ही होती हैं और कुछ तो इतने ही काल की होती हैं कि हमारे चुटकी बजाते ही उनकी तीन पीढ़ियाँ समाप्त हो जाती हैं। उनका उतना ही काल होता है। कछुआ पाँच सौ साल भी जीवित रह जाता है। उसका काल अलग है। घट बनते रहते हैं, बिगड़ते रहते हैं।

उनके पूर्व जन्म की विषय-वासनाएँ, कामनाएँ, इच्छाएँ, स्पृहा, तृष्णाएँ, आशाएँ, पूरी होने के लिए एक शरीर से दूसरे शरीर में जाते रहते हैं, इसलिये जो भी तीव्र इच्छाएँ, कामनाएँ हम करते हैं उनमें कुछ पूरी हो जाती हैं। जो पूरी नहीं होती वे हमारे मन में ही रह जाती हैं। उसके आधार पर हम जन्मों-जन्मों तक अलग-अलग प्रकार के प्रयास करते रहते हैं। विभिन्न शरीरों को भोगते हैं। विभिन्न योनियों में उत्पन्न होते रहते हैं। श्रीभगवान् यहाँ पाँच इन्द्रियों व उनके विषयों के बारे में बात करते हैं।

श्रोत्र : इसका विषय है शब्द। इसकी इन्द्रिय है, कान।

हिरण की गति इतनी तेज होती है कि चीता चालीस बार में से औसतन एक बार ही इसका शिकार कर पाता है। उनतालीस (39)बार वह विफल होता है। (In average a leopard makes forty attempts but only once it succeeds in preying on deer)

हिरण का गुण है चपलता पर उसका एक व्यसन भी है- ध्वनि (सङ्गीत)
हिरण के पास कस्तूरी नामक द्रव्य होता है। उसे प्राप्त करने के लिए शिकारी उसे पकड़ते हैं। मनुष्य बुद्धिमान प्राणी है।

हिरण अपनी चौकड़ी से चीते से अधिक तेज भागता है, परन्तु इतनी चौकड़ी भरने वाले हिरण को मनुष्य पकड़ लेता है। इसका कारण है, हिरण की वासना। हिरण को सङ्गीत अत्यन्त प्रिय है। भगवान् श्रीकृष्ण जब भी बाँसुरी बजाते हैं, उनके आस-पास हिरण अवश्य होते हैं। कस्तूरी के कारण हिरण को पकड़ने वाले शिकारी एक विशेष प्रकार की धुन बजाते हैं। विशेष यन्त्र के द्वारा वे सङ्गीत बजाते हैं। हिरण अपनी आँखें बन्द कर, उस धुन को सुनकर मग्न हो जाता है। अत्यन्त आसक्त होकर वह सङ्गीत का श्रवण करता है। शिकारी जब देखता है कि हिरण उस धुन में पूरी तरह आसक्त हो गया है तो वह धीरे-धीरे उसके पास जाकर उसे पकड़ लेता है। कस्तूरी का स्थान हिरण के अण्डकोष के पास होता है। शिकारी अण्डकोष को काटता है, कस्तूरी को प्राप्त करता है और उस हिरण को तड़पते हुए छोड़कर वहाँ से चला जाता है।

चक्षुः इसका विषय है रूप, दृश्य। इसकी इन्द्रिय है नेत्र अथवा आँख। नेत्र का विषय है रूप, दृश्य, जो भी दृश्य हम देखते हैं। हमनें पतङ्गों को देखा है। रात में एक ही रोशनी पर हजारों पतङ्गें आकर टकराते हैं। रात भर उस प्रकाश से टकरा कर सुबह तक वो पतङ्गें मर जाते हैं। जब वे टकराते हैं तो उन्हें आनन्द नहीं आता है, उन्हें चोट लगती है। लेकिन चोट लगने पर भी पतङ्गों को रूप का आकर्षण इतना अधिक होता है कि प्रकाश को प्राप्त करने के लिए प्रकाश पर टकरा-टकराकर अपने प्राण गँवा देते हैं। पतङ्गें दीपक की लौ में जल कर, भस्म हो जाते हैं। ऐसा नहीं है कि उन्हें दर्द नहीं होता है। जैसे ही वे दीपक के पास आते हैं उसकी ऊष्मा पतङ्गों को जलाकर भस्म कर देती है, परन्तु पतङ्गा उस दीपक की रोशनी के आकर्षण को छोड़ नहीं पाता। वह अपने प्राण खो देता है परन्तु उसकी प्रकाश को प्राप्त करने की वासना पूरी नहीं होती। रूप के आकर्षण में पतङ्गा अपने प्राण गँवाता है। तेज चौकड़ी भरने वाला हिरण शब्द के आकर्षण में अपने प्राण गवाँ देता है।

स्पर्श- इसका विषय है स्पर्श। इसकी इन्द्रिय है त्वचा। संसार का सबसे शक्तिशाली प्राणी हाथी जिससे शेर भी नहीं उलझता,

महावत के छोटे से अङ्कुश से उसके इशारों पर करतब करता है। उठता-बैठता है, पाँव उठाता है। मनुष्य सबकी कमज़ोरी जानता है और हाथी की कमज़ोरी है, हथिनी का स्पर्श। हाथी को पकड़ने के लिए मनुष्य अमावस्या के दिन बड़ा गड्ढा खोदता है और हाथी को पकड़ने के लिए पिञ्जरा लगाता है। उस गड्ढे को पुआल से ढक दिया जाता है। उसके पीछे हथिनी के आकार का (frame) ढाँचा लगाया जाता है। उस पर हथिनी का ताजा गोबर लगाया जाता है। हथिनी के स्वर वाली विशेष ध्वनि बजाई जाती है। हाथी दो किलोमीटर से भी किसी भी ध्वनि को सुन सकता है, अतः वह हथिनी की इस आवाज को सुनकर उस दिशा में दौड़ता है। अमावस्या की रात्रि में उसे वह ढाँचा हथिनी जैसा ही दिखाई देता है। थोड़ा पास आकर हथिनी के गोबर के कारण उसे हथिनी की गन्ध भी आती है। अब उसे विश्वास हो जाता है कि यह हथिनी ही है। उसे स्पर्श करने के लोभ के कारण वह गड्ढे में गिर कर उसमें फँस जाता है। कुछ न कर पाने की स्थिति में वह जोर से चिङ्घाड़ता है। उसकी चिङ्घाड़ से जङ्गल के सभी पशु पक्षी विचलित हो जाते हैं। गड्ढे से निकलने के प्रयास में वह चारों ओर से स्वयं को घायल कर लेता है। घावों से उसे पीड़ा भी होती है। इतना थक जाता है कि वह चिङ्घाडना बन्द कर देता है। तीन दिन तक कोई शिकारी महावत उसके पास नहीं जाता है। भूख और घावों से व्यग्र हाथी हताश हो जाता है। तीन दिन पश्चात् महावत उसके पास जाता है और उसे केले और रोटी देता है। महावत के जाने के बाद हाथी उन केलों और रोटी को खा लेता है। अगले दिन जब महावत जङ्गल आता है तो हाथी चिङ्घाड़ता नहीं है वरन् खाने की आशा करता है। महावत के हाथ में केले देखते ही हाथी सूँड बढ़ाकर उससे केले लेता है। हाथी प्रसन्नता से केले लेता है। पाँचवें दिन हाथी प्रतीक्षा करता है कि कब महावत आएगा? आज महावत हाथी को सीधे रोटी नहीं देता बल्कि विशेष प्रकार के करतब सिखाता है। दाएँ मुडो, बाएँ मुडो।

हाथी के करतब कर लेने पर उसे पुरस्कार के तौर पर केला देता है। हाथी बुद्धिमान प्राणी है। अब हाथी को समझ में आ जाता है कि मैं कार्य करता हूँ तो मुझे केला मिलता है। वह महावत के सङ्केतों को समझने का पूरा प्रयास करता है। उससे अगले दिन और कुशलता से महावत की बात मानता है। छः दिन में महावत और हाथी की दोस्ती हो जाती है। सातवें दिन उसको पटरा लगाकर बाहर निकाला जाता है। महावत उसे सूँड से पकड़कर अपने ऊपर बैठाने का सङ्केत करता है। हाथी उसकी सभी बात मानता है। सबसे शक्तिशाली जङ्गल का राजा हाथी महावत के अङ्कुश के सङ्केतों पर अपना जीवन व्यतीत करता है। स्पर्श की वासना में हाथी अपनी स्वतन्त्रता गँव देता है। आठ दिन पहले तक स्वतन्त्र हाथी था और आठ दिन बाद अपनी स्वतंत्रता गँवा देता है।

रस - इसका विषय है रस, स्वाद। इसकी इन्द्रिय है जिह्वा। मछुआरा मछली को पकड़ने के लिए आटे की गोली बनकर काँटें में फँसा कर पानी में डालता है। मछली को आटे का स्वाद इतना प्यारा है कि वह उसका आकर्षण नहीं छोड़ पाती और उसके लिए अपने प्राण गँवा देती है। स्वाद के आकर्षण में मछली अपने प्राण गँवा देती है।

घ्राण - इसका विषय है गन्ध। इसकी इन्द्रिय है नाक, नासिका। भँवरे को फूल की सुगन्ध प्रिय है। भ्रमर को पुष्प का पराग विशेष प्रिय होता है। प्रकृति ने भ्रमर को अग्र दाँत अत्यन्त कठोर प्रदान किए हैं। इसके कारण वह कठोर से कठोर पेड़ में भी छेद करके उसमें रह सकता है। भ्रमर को कमल के पराग की सुगन्ध अत्यन्त प्रिय है। सुबह जैसे ही कमल खिलता है, भ्रमर उस पर जाकर बैठ जाता है। दिन भर उसका आनन्द लेता है। सन्ध्या में कमल की पङ्खुड़ियाँ एक-एक कर बन्द होने लगती हैं। भ्रमर को पता है कमल बन्द हो रहा है, मुझे निकल जाना चाहिए। थोड़ा और, यही सोच कर वह वहीं बैठा रहता है, परन्तु भ्रमर पराग के आकर्षण में उससे बाहर नहीं निकलता और सुबह तक अपने प्राण गँवा देता है।

हिरण शब्द की आसक्ति में, रुप के आकर्षण में पतङ्गा, हाथी स्पर्श की आसक्ति में, भँवरा सुगन्ध की आसक्ति में, मछली स्वाद की आसक्ति में,
ये सब प्राणी तो एक-एक वासनाओं में ही फँसे हैं, परन्तु मनुष्य में तो अनेक वासनाएँ हैं। बढ़िया खाना, बढ़िया दृश्य, घूमना-फिरना, बढ़िया इत्र, बढ़िया सुगन्ध, बढ़िया कपड़े, बिस्तर। हम तो इन पाँचों इन्द्रियों के आकर्षण में जीवन भर फँसे रहते हैं। उसकी गति क्या होगी विचारणीय है? ये वासनाएँ कभी पूर्ण नहीं होती। इन्हीं की तृप्ति और अतिरिक्त वासनाओं में फँसकर मनुष्य बार-बार जन्म लेता है, मरता है। बार-बार इन्हीं योनियों में भटकता रहता है।

15.10

उत्क्रामन्तं(म्) स्थितं(वँ) वापि, भुञ्जानं(वँ) वा गुणान्वितम्।
विमूढा नानुपश्यन्ति, पश्यन्ति ज्ञानचक्षुषः॥15.10॥

शरीर को छोड़कर जाते हुए या दूसरे शरीर में स्थित हुए अथवा विषयों को भोगते हुए भी गुणों से युक्त (जीवात्मा के स्वरूप) को मूढ़ मनुष्य नहीं जानते, ज्ञानरूपी नेत्रोंवाले (ज्ञानी मनुष्य ही) जानते हैं

विवेचन:- श्रीभगवान् कहते हैं तीन स्थितियाँ होती हैं। शरीर धारण करने से पहले की स्थिति, शरीर धारण करने की स्थिति और फिर शरीर को भोगने की स्थिति। ये तीन प्रकार की स्थितियाँ है। जीवात्मा पहली स्थिति में है।
उस शरीर के साथ भोगों को भोगना। उत्क्रामन्तं, स्थिति, भुञ्जानं, ये हर जीव की तीन स्थिति स्थाई है। अभी हम भुञ्जानं स्थिति में हैं, मरने पर उत्क्रामन्तं स्थिति में आ जाएँगे। फिर से नया जन्म लेंगे तो नई स्थिति में आ जाएँगे। हमें लगता है कि हमारा सत्तर-अस्सी साल का ही जीवन है। जितने मौज मस्ती करनी है कर लो। पता ही नहीं कि यही हम करोड़ों जन्मों से करते आ रहे हैं। यह काम कभी बन्द ही नहीं हुआ। हर सत्तर-अस्सी साल में जीव बदल जाता है। कभी कुत्ते बनते हैं, कभी कीट बनते हैं, कभी मछली, कभी गधा, कभी पेड़ बनते हैं, कभी स्त्री, कभी पुरुष, कभी देवता बनते हैं। इस योनि के जो गुण होते हैं, वे भक्त में हैं। हे अर्जुन! जो इन तीन स्थितियों को जानते हैं वहीं ज्ञानी हैं और जो नहीं जानते वे अज्ञानी हैं तो ज्ञान कैसे होगा?

बिनु गुर होइ कि ग्यान ग्यान कि होइ बिराग बिनु।
गावहिं बेद पुरान सुख कि लहिअ हरि भगति बिनु॥

दो बातों के बिना ज्ञान नहीं हो सकता। गुरु के बिना अथवा वैराग्य के बिना। किसी को लग सकता है कि मैं कितने वर्षों से अभ्यास कर रहा हूँ।
मरता ज्ञानी भी है और मरता अज्ञानी भी है पर दोनों में बड़ा अन्तर है।

एक सत्य घटना है।-
एक पूर्व जन्म की योगिनी स्त्री थी। बचपन से ही सत्सङ्ग करती, नाम जप करती। श्रीभगवान् का ध्यान करती। गहनों में ज्यादा आकर्षण नहीं था। अपने सद्भाव से पति को भी सत्सङ्ग में लगा दिया। दोनों साथ में सत्सङ्ग के लिए जाते। समय आने पर एक पुत्र भी हो गया। पति कार्यालय जाते थे। स्त्री घर का काम करती थी। बच्चा स्कूल जाता। पुत्र जब आठ-नौ वर्ष का हुआ तब अचानक एक दुर्घटना हुई। जब बालक बहार खेल रहा था तो उसे सर्प ने डस लिया। साँप अत्यन्त जहरीला था। दंश करते ही पुत्र एकदम चीखा। चीखते ही उसके प्राण निकल गए। स्त्री बाहर आई तब तक पुत्र समाप्त हो चुका था। इकलौता पुत्र,वपूरे जीवन धर्म का पालन करने वाली स्त्री की आँखों में आँसू आ गए। शव को उठाकर अन्दर ले जाकर कमरे में रखा। शाम को पति घर आए तो पति को कुछ नहीं बताया।

भोजन करते समय पति ने कहा आज क्या बात है? तुम्हारा चेहरा उदास दिख रहा है। क्या हुआ? तुम्हारे चेहरे पर कान्ति नहीं है। पत्नी ने कहा पहले आप भोजन कर लीजिए फिर बात करते हैं। पति ने कहा कोई बात नहीं तुम बतलाओ क्या बात है। पत्नी ने कहा क्या बताऊँ? पड़ोस में जो स्त्री रहती है, कई वर्ष पहले मुझसे काँसे का पतीला माँग कर ले गई थी। उसे कुछ काम था, उसने मुझसे माँगा और मैंने दे दिया। फिर मुझे काम ही नहीं पड़ा और मैंने उससे माँगा ही नहीं। कितने वर्षों से उसी के पास था। आज मुझे उस पतीले का काम पड़ा। मैं माँगने गई तो वह स्त्री झगड़ने लगी। भला-बुरा कह रोने लगी, दूसरों को भी एकत्रित कर लिया। पति ने कहा यह तो बहुत ग़लत बात है। तुम्हारा पतीला था, तुम्हें वापस करने में रोने की कौन सी बात है, जिसकी वस्तु उसको देने में रोना क्या? पत्नी ने कहा सही बात है।

इतने में पति का भोजन पूरा हुआ। पति के हाथ धुलाकर धीरे-धीरे पति को दूसरे कमरे में लेकर गई। पति जब तक समझ पाए बात क्या है उसने जमीन पर लेटे हुए अपने पुत्र को देखा। पास में तुलसी का गमला रखा था। धूप जल रही थी और पुत्र निश्चेष्ट पड़ा था। पति स्तब्ध हो गया। पत्नी ने रोते हुए कहा अभी तो आपने कहा था, जिसकी वस्तु है उसको देने में रोना कैसा? पत्नी ने कहा श्रीभगवान् ने हमें पुत्र कुछ समय के लिए दिया था, अब वापस ले लिया तो हमें रोना नहीं चाहिए। पत्नी की इस प्रकार की स्थिति को प्रत्यक्ष देखकर पति का मन द्रवित हो उठा। किसी माँ का इकलौता पुत्र चला जाए तो उसकी मन:स्थिति का अनुमान लगा कर ही असहज वातावरण हो जाता है। कितना उत्तम सत्सङ्ग का प्रभाव है कि जिसकी वस्तु थी उसने वापस ले ली। पति ने

पत्नी को गले लगाया और कहा तुम ठीक कहती हो। बात सही है सत्सङ्ग मैंने भी सुना है, पर जिया तो तुमने है। माँ होकर यह बात तुम कह सकती हो यह तो मेरी कल्पना से भी परे की बात है।

पुत्र का संस्कार किया। पति ने नौकरी छोड़ दी। दोनों वृन्दावन में जाकर सत्सङ्ग करने लगे। सभी के जीवन में ऐसी घटना होती है किन्तु ज्ञानी की दृष्टि और अज्ञानी की दृष्टि अलग-अलग होती है।

अज्ञानी कहता है क्या मिला मुझे पूजा करके? क्या मिला सबके साथ अच्छा करके? सबके साथ अच्छा किया और बदले में मेरे साथ ऐसा हो गया। ज्ञानी कहेगा जिसकी वस्तु थी उसने वापस ले ली, मेरी थोड़े ही थी। जिसने दी कुछ समय के लिए दी यह कह कर तो नहीं दी थी कि इतने समय के लिए दे रहा हूँ। जब तक इच्छा थी उतने समय तक के लिए दी, अब उसे आवश्यकता थी उसने वापस ले ली। विमूढ़ उसे नहीं देख सकते, ज्ञानचक्षु वाले ही देख सकते हैं।

15.11

यतन्तो योगिनश्चैनं(म्), पश्यन्त्यात्मन्यवस्थितम्।
यतन्तोऽप्यकृतात्मानो,नैनं(म्) पश्यन्त्यचेतसः।।11।।

यत्न करने वाले योगी लोग अपने आप में स्थित इस परमात्म तत्त्व का अनुभव करते हैं। परन्तु जिन्होंने अपना अन्तःकरण शुद्ध नहीं किया है, (ऐसे) अविवेकी मनुष्य यत्न करने पर भी इस तत्त्व का अनुभव नहीं करते।

विवेचन - हम लोगों के मन में भी यह विचार आता है कि इतनी गीता पढ़ लो, इतना जाप कर लो, इतना ध्यान कर लो, इतनी पूजा कर लो, तो सब काम हो जाएँगे। श्रीभगवान् कहते हैं, ऐसा होता नहीं है। यत्न करने पर भी इस आत्म तत्त्व को नहीं जान पाते। हमें भी रोकने वाले मिलते हैं और हमने भी किसी को टोका होगा। क्या फायदा, क्या लाभ गीता पढ़ने का? गीता पढ़ते रहते हैं, फिर भी रसगुल्ले के लिए लार टपकती रहती है। गीता पढ़ते रहते हैं, फिर भी भाई से जमीन के लिए झगड़ते रहते हैं। गीता पढ़ते हैं, फिर भी साड़ी में मन लगा रहता है। गहनों का इतना मोह है। तीन-तीन घण्टे पूजा करते हैं और थोड़े से धन के लिए झूठ बोल देते हैं। दो-दो घण्टे ध्यान लगाते हैं और थोड़ी सी मन की ना हो तो गाली बकते हैं। ऐसा होता है, यह हमने ऐसे आस-पास भी देखा है और हम स्वयं भी ऐसा ही करते हैं। श्रीभगवान् कहते हैं कि मात्र यत्न करने से ही नहीं होगा। अन्तःकरण को शुद्ध करना पड़ेगा।

माला जपूँगा, पूजा करूँगा लेकिन मन में झूठ कपट होगा तो कोई असर या कोई लाभ नहीं होगा। प्रभाव उसको दिखेगा जो अपने जीवन में आचरण में लाएगा। दूसरों के बारे में निन्दा नहीं करूँगा, दूसरों के प्रति बुरे विचार नहीं लाऊँगा। मेरे मन का न हुआ तो मैं विक्षप्त नहीं हो जाऊँगा, उदास नहीं होऊँगा, क्रोधित नहीं होऊँगा। अपने अन्तःकरण में वासनाओं को, कामनाओं को भरूँगा नहीं।

यं यं वापि स्मरन्भावं त्यजत्यन्ते कलेवरम्।
अन्त समय में जीव जिनका स्मरण करता हुआ शरीर छोड़ता है, अगले जन्म में उसे वही मिलता है।

आम का चिन्तन करते हुए शरीर को छोड़ा तो आम के कीड़े का ही जन्म मिलेगा। मैंने कितनी मेहनत से मकान बनाया, मकान के मोह के साथ शरीर छोड़ा तो मकान की छिपकली बनकर ही घूमोगे। मेरे पुत्र, मेरी पुत्री मेरे बच्चे, बच्चों के मोह में शरीर छोड़ तो अगला जन्म एक साथ बारह बच्चे पैदा करने वाले शूकर का जन्म मिलेगा। अन्त समय में जो चिन्तन करते हुए जाएँगे उसी प्रकार की अगली योनि प्राप्त होगी। अन्त समय में चिन्तन उसी बात का चलेगा जो जीवन भर हमने किया है। उपनिषदों में कहा है कि यदि दीवार दक्षिण की ओर झुकी है तो वह जब भी गिरेगी दक्षिण की ओर ही गिरेगी और यदि दीवार उत्तर की ओर झुकी है तो वह जब भी गिरेगी उत्तर की ओर ही गिरेगी। अन्त:करण की शुद्धि करना पड़ता है।
जन्म जन्म मुनि जतनु कराहीं। अंत राम कहि आवत नाहीं।।

15.12

यदादित्यगतं(न्) तेजो, जगद्भासयतेऽखिलम्।
यच्चन्द्रमसि यच्चाग्नौ,तत्तेजो विद्धि मामकम्।।12।।

सूर्य को प्राप्त हुआ जो तेज सम्पूर्ण जगत् को प्रकाशित करता है (और) जो तेज चन्द्रमा में है तथा जो तेज अग्नि में है, उस तेज को मेरा ही जान।

विवेचन- श्रीभगवान् ने इस श्लोक में सूक्ष्म से लघु, (Micro to Macro) अपनी सत्ता का इतना सुन्दर विवेचन किया है, जो और कहीं देखने को नहीं मिलता। श्रीभगवान् कहते हैं हे अर्जुन! सूर्य में जो तेज है, चन्द्रमा में, अग्नि में जो तेज है तुम उसे मेरा ही तेज जानो।

अग्नि की तीन शक्तियाँ हैं। एक उसकी दाहकता, उसकी उष्णता (heat) और प्रकाश शक्ति। (light) तो उसकी जो ऊष्मा है, उसकी जो गर्मी है वह श्रीभगवान् का ही तेज है। आप आग जलाते हैं तो उससे गर्मी लगती है पर उससे अधिक प्रकाश नहीं होता। दाहकता है वहाँ पर प्रकाश नहीं। रात में चन्द्रमा का प्रकाश आता है पर उसमें दाहकता नहीं है, शीतलता है। चन्द्रमा के प्रकाश में रोशनी है पर ताप नहीं है। सूर्य में दाहकता भी है और प्रकाश भी है। श्रीभगवान् कहते हैं, ये तीनों मेरे ही स्वरूप हैं। मुझसे ही प्रकाशित होते हैं।

15.13

गामाविश्य च भूतानि, धारयाम्यहमोजसा।
पुष्णामि चौषधीः(स्) सर्वाः(स्), सोमो भूत्वा रसात्मकः।।13।।

मैं ही पृथ्वी में प्रविष्ट होकर अपनी शक्ति से समस्त प्राणियों को धारण करता हूँ और (मैं ही) रस स्वरूप चन्द्रमा होकर समस्त ओषधियों (वनस्पतियों) को पुष्ट करता हूँ।

विवेचन- श्रीभगवान् कहते हैं- हे अर्जुन! मैं ही पृथ्वी में प्रवेश करके अपनी शक्ति से सब भूतों को धारण करता हूँ। श्रीभगवान् अब शक्ति का अवतरण करते हैं। पहले सूर्य चन्द्रमा की बात की, अब पृथ्वी की बात कर रहे हैं, वनस्पतियों के बारे में बताते हैं। श्रीभगवान् कहते हैं मैं ही अमृत रूपी चन्द्रमा होकर सभी औषधियों को पुष्ट करता हूँ।

15.14

अहं(व्ँ) वैश्वानरो भूत्वा, प्राणिनां(न्) देहमाश्रितः।
प्राणापानसमायुक्तः(फ्), पचाम्यन्नं(ञ्) चतुर्विधम्॥15.14॥

प्राणियों के शरीर में रहने वाला मैं प्राण-अपान से युक्त वैश्वानर (जठराग्नि) होकर चार प्रकार के अन्न को पचाता हूँ।

विवेचन- हे अर्जुन! मैं ही सभी प्राणियों के शरीर में स्थित रहने वाला प्राण और अपान से संयुक्त रूप से स्थित होकर, चार प्रकार के भोजन को पचाता हूँ। पहले श्रीभगवान् सूर्य और चन्द्रमा में अपना वर्णन करते हैं, फिर पृथ्वी और वनस्पति में करते हैं तो प्रश्न उठता है क्या परमात्मा बाहर ही बाहर हैं? तो वे कहते हैं नहीं! मैं तुम्हारे अन्दर भी हूँ।

वह महाकाश सूर्य और चन्द्रमा के प्रकाश में स्थित होकर इस मठाकाश में आता है। धरती में प्रवेश करता है। उसी घटाकाश में जाता है और उन वनस्पतियों को खाकर हम जीवित रहते हैं। इस घटकाश में वह प्रवेश करता है। श्रीभगवान् कहते हैं - हे अर्जुन! मैं ही पान और अपान रूप में स्थित होकर वैश्नार अग्नि रुप होकर स्थित होता हूँ।

तीन प्रकार की अग्नि मुख्य होती है।

बड़वाग्नि जो समुद्र के अन्दर होती है, जिससे समुद्र में ज्वार आता है।
दावाग्नि अर्थात् जङ्गल की आग और
जठराग्नि अर्थात् जो हमारे शरीर में उदर के रूप रहती है, अन्दर की आग।

सुबह से शाम तक आप आइसक्रीम खाएँ, खूब ठण्डा-ठण्डा खाइएँ पर जब भी अगली सुबह मल त्याग करेंगे वह गर्म होगा। अग्नि से होकर ही पचेगा। मैं कैसे भी पदार्थ को किसी भी तापमान में खाऊँगा अन्दर जाकर जठराग्नि में, वैश्वानर अग्नि से पचता है। इसी कारण हमारे ऋषि कहते हैं कि सूर्यास्त के पहले भोजन कर लें तो वह अच्छे से पचता है। सूर्यास्त के बाद ज्यादा मत खाओ। जठराग्नि सूर्य के साथ बढ़ती है और सूर्यास्त के बाद यह अग्नि मद्धिम पड़ जाती है। दिन में ज्यादा खाएँगे तो भी पच जाएगा।

चार प्रकार के अन्न होते हैं-
भक्ष्य जो खाए जाते हैं, **पेय** जो पिए जाते हैं, **लेह्य** जिसे चाट कर खाते हैं, जैसे चटनी जिसे चाटते है और **चोष्य** जिसे चूस कर खाते हैं, जैसे आम और गन्ना। इन्हें चूस के ही खाते है।

प्राण वायु पाँच प्रकार की होते है- प्राण, अपान, उदान, समान और व्यान। पाँच इनके उपप्राण हैं।

सूर्य की शक्ति से वनस्पति पकती है। चन्द्रमा शीतलता प्रदान करके उसको पुष्ट करता है। फिर वह औषधि हमारे शरीर में प्रवेश करती है। पान और अपान शक्ति से गुरुत्वाकर्षण के नियमों का उल्लङ्घन करके हमें लैटा कर खिलाया जाए या बाएँ ओर या दाएँ ओर लैटा कर खिलाया जाए या हम उल्टा लटक कर खााएँ। खाने वाला पदार्थ सीधा पेट में, उदर में ही जाता है। ऐसा नहीं होगा कि आप उल्टा लटक कर खाएँगे तो वह सिर में चला जाएगा। गुरुत्वाकर्षण की शक्ति का उल्लङ्घन करके वह पान और अपान भोजन को उदर तक पहुँचाते हैं और वहाँ वह जठराग्नि में पक कर रस बनता है। वहाँ से समान वायु हमारे एक-एक रोम तक उस शक्ति को पहुँचाती है। वह महाकाश, मठाकाश से होते हुए इस घटाकाश तक पहुँचता है। वह परमात्मा इस तरह हमारे रोम-रोम में व्याप्त हो जाता है। श्रीभगवान् आप कहाँ हो, आपका पता क्या है? तो अगले श्लोक में श्रीभगवान् अपना पता बताते हैं।

15.15

सर्वस्य चाहं(म्) हृदि सन्निविष्टो, मत्तः(स्) स्मृतिर्ज्ञानमपोहनं(ञ्) च।
वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यो, वेदान्तकृद्वेदविदेव चाहम्।।15।।

मैं ही सम्पूर्ण प्राणियों के हृदय में स्थित हूँ तथा मुझसे (ही) स्मृति, ज्ञान और अपोहन (संशय आदि दोषों का नाश) होता है। सम्पूर्ण वेदों के द्वारा मैं ही जानने योग्य हूँ। वेदों के तत्त्व का निर्णय करने वाला और वेदों को जानने वाला भी मैं (ही हूँ)।

विवेचन- श्रीभगवान् कहते हैं -हे अर्जुन! मैं ही सभी प्राणियों के हृदय में स्थित हूँ। हृदय का अर्थ यह नहीं है कि किसी अङ्ग में रहते हैं। यह रूपक है, इसका अर्थ है, हमारे भीतर रहते हैं।

स्मृति अर्थात् पुराना सीखा हुआ। ज्ञान अर्थात् नया सीखना, अपोहन अर्थात् संशयो का नाश करना। हम क्या जानते हैं, क्या नहीं जानते हैं? हमारे संशय का नाश इस अपोहन से ही होता है। श्रीभगवान् कहते हैं तुम्हारे मस्तिष्क की स्पष्टता मै हूँ। जहाँ पर अस्पष्टता है वह तुम्हारी बुद्धि में पड़ा हुआ मोह है। जहाँ पर मैं नहीं हूँ, वहाँ स्पष्टता का अभाव होगा। वेदों के द्वारा जानने योग्य भी मैं ही हूँ। सोलह, सत्रह और अट्ठारह श्लोकों में श्रीभगवान् अपने स्वरूप का वर्णन करते हैं।

15.16

द्वाविमौ पुरुषौ लोके, क्षरश्चाक्षर एव च।
क्षरः(स्) सर्वाणि भूतानि, कूटस्थोऽक्षर उच्यते।।16।।

इस संसार में क्षर (नाशवान्) और अक्षर (अविनाशी) – ये दो प्रकार के ही पुरुष हैं। सम्पूर्ण प्राणियों के शरीर क्षर और जीवात्मा अक्षर कहा जाता है।

विवेचन - इस संसार में नाशवान और अविनाशी दो प्रकार के पुरुष हैं। सम्पूर्ण भूत-प्राणियों के शरीर नाशवान हैं और यह जीवात्मा अविनाशी है
श्रीभगवान् कहते हैं- हे अर्जुन! दो प्रकार के मूल तत्त्व हैं। एक जो नष्ट होता है और एक वो जो कभी नष्ट नहीं होता। यह शरीर जब से पैदा हुआ है, तब से बदल रहा है। कभी भी एक जैसा नहीं रहता, हर पल बदल रहा है। हमारे बचपन की फोटो यदि कोई दिखाए तो हम उसे पहचान नहीं पाएँगे। शिशु रूप की अपनी ही फोटो हम पहचान नहीं पाएँगे।

लगभग साढ़े तीन साल में इस शरीर की सभी कोशिकाएँ नष्ट होकर पुनः जीवित हो जाती हैं। हर क्षण, हर पल यह शरीर बदल रहा है। हर क्षण, हर पल बदलाव होने पर भी इस शरीर में कुछ है, जो नहीं बदल रहा है, वह मैं हूँ। यह प्रवृत्ति पाँच साल पहले भी थी, दस साल बाद में भी होगी, पन्द्रह, पच्चीस, पचास, अस्सी साल हो जाने के बाद भी वैसे ही रहेगी, वह बदलेगी नहीं। वह चेतन तत्त्व है।

श्रीभगवान् कहते हैं दो तत्त्व हैं, एक क्षर और एक अक्षर। उसे क्षर-अक्षर कहो, प्रकृति-पुरुष कहो, जड़-चेतन कहो, देह-देही कहो, क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ कहो, या फिर नाशी-अविनाशी कहो। ये सारे विभाग किसी भी नाम से पुकारे जायें, ये दो प्रकार से चलते हैं। श्रीभगवान् कहते हैं- हे अर्जुन! मैं इससे भी आगे की बात बतलाता हूँ। दो बातें हैं एक क्षर और एक अक्षर, एक नाशी और एक अविनाशी। इसमें जो आत्मा है वह कभी मरती नहीं। शरीर मरता रहता है, परन्तु इन दोनों से भी अलग एक बात है, वह आगे देखते हैं।

15.17

उत्तमः(फ्) पुरुषस्त्वन्यः(फ्), परमात्मेत्युदाहृतः।
यो लोकत्रयमाविश्य, बिभर्त्यव्यय ईश्वरः।।17।।

उत्तम पुरुष तो अन्य (विलक्षण) ही है, जो 'परमात्मा'– इस नाम से कहा गया है। (वही) अविनाशी ईश्वर तीनों लोकों में प्रविष्ट होकर (सबका) भरण-पोषण करता है।

विवेचन- आत्मा कभी मरती नहीं और शरीर हर पल बदलता रहता है। लेकिन इन दोनों से भी अलग एक बात है।

जो तीनों लोकों में प्रवेश करके सबका धारण करते हैं। अविनाशी परमेश्वर परमात्मा के लिए इस प्रकार से कहा गया है। जो इस महाकाश, मठाकाश और घटाकाश में हैं। इन तीनों को भी रचने वाले, सम्भालने वाले ये तो कोई उत्तम पुरुष अन्य ही हैं। जहाँ भी शास्त्र में आप पुरुष शब्द पढ़ते हैं उसका अर्थ स्त्री-पुरुष वाला पुरुष नहीं होता है। यहाँ पर इसका अर्थ होता है इकाई, पुरुष का अर्थ जीव, ऐसा समझना पड़ता है।

पुरुष और यह शरीर एक बात है। हम श्रीभगवान् के अंश हैं, श्रीभगवान् ने हमको जन्म दिया है। श्रीभगवान् तो अपनी प्रकृति को आधीन करके इस सृष्टि पर अवतार लेकर एक रूप में आ जाते हैं। श्रीभगवान् ने निश्चित कर लिया है। मैं दशरथ और कौशल्या के पुत्र के रूप में जन्म लूँँगा। क्या हम तय कर सकते हैं कि हमारे माता-पिता कौन होंगे?

श्रीभगवान् कहते हैं, नही! (You don't have such right.)
मैं तुम्हें उत्पन्न कर सकता हूँ। तुम मेरा अंश होने पर भी, मैं तुमसे श्रेष्ठ हूँ। मैं तुमसे उत्तम हूँ, तुमसे अलग हूँ, इसलिये उनको अलग उपमा ही देनी चाहिए।

15.18

यस्मात्क्षरमतीतोऽहम्, अक्षरादपि चोत्तमः।
अतोऽस्मि लोके वेदे च, प्रथितः(फ्) पुरुषोत्तमः।।18।।

कारण कि मैं क्षर से अतीत हूँ और अक्षर से भी उत्तम हूँ, इसलिये लोक में और वेद में 'पुरुषोत्तम' (नाम से) प्रसिद्ध हूँ।

विवेचन- हे अर्जुन! क्योंकि मैं अनाशवान व क्षर से अतीत हूँ और जीवात्मा, अक्षर से भी उत्तम हूँ इसलिये इस लोक में और वेदों में पुरुषोत्तम नाम से प्रसिद्ध हूँ। श्रीभगवान् ने स्वयं को पुरुषोत्तम रूप में मण्डित किया, इसलिये यह अध्याय पुरुषोत्तमयोग कहलाकर सम्पूर्ण भगवद्गीता का प्रमुख अध्याय बन गया।

15.19

यो मामेवमसम्मूढो, जानाति पुरुषोत्तमम्।
स सर्वविद्भजति मां(म्),सर्वभावेन भारत।।19।।

हे भरतवंशी अर्जुन ! इस प्रकार जो मोह रहित मनुष्य मुझे पुरुषोत्तम जानता है, वह सर्वज्ञ सब प्रकार से मेरा ही भजन करता है।

विवेचन- हे अर्जुन, जो ज्ञानी पुरुष इस प्रकार मुझे पुरुषोत्तम जानते हैं, वे सर्वज्ञ जान, सब प्रकार से मुझ वासुदेव का ही चिन्तन करते हैं।

प्रकृति, पुरुष और पुरुषोत्तम, ये तीन बातें हैं। पुरुष और प्रकृति एक दूसरे से निकट हैं, पास हैं। पुरुष और पुरुषोत्तम भी एक दूसरे से निकट हैं। हमें यह संसार भी निकट लगता है, परन्तु हम उतने ही श्रीभगवान् के भी निकट हैं क्योंकि श्रीभगवान् से ही उत्पन्न हुए हैं। परमात्मा से पुरुष बना, पुरुष से प्रकृति बनी। प्रकृति और पुरुषोत्तम बहुत निकट हैं इसलिये अपने आत्म-तत्त्व का चिन्तन करके उसको जाना जा सकता है। मैं ही पुरुषोत्तम हूँ, मैं ही पुरुषोत्तम का अंश हूँ, यह जान लेने को ही मोक्ष कहा गया, आत्म साक्षात्कार कहा गया, निर्वाण कहा गया। अलग-अलग रूप से उसकी उपमाएँ दी गईं।

15.20

इति गुह्यतमं(म्) शास्त्रम्, इदमुक्तं(म्) मयानघ।
एतद्बुद्ध्वा बुद्धिमान्स्यात्, कृतकृत्यश्च भारत।।20।।

हे निष्पाप अर्जुन ! इस प्रकार यह अत्यन्त गोपनीय शास्त्र मेरे द्वारा कहा गया है। हे भरतवंशी अर्जुन ! इसको जानकर (मनुष्य) ज्ञानवान् (ज्ञात-ज्ञातव्य) (तथा प्राप्त-प्राप्तव्य) और कृतकृत्य हो जाता है

विवेचन- श्रीभगवान् को अर्जुन के दो सम्बोधन बहुत प्रिय हैं। एक **अनघ,** जिसने कभी कोई पाप नहीं किया। दूसरा **अनुसूय,** जो किसी की निन्दा नहीं करता। अर्जुन ने जीवन में कभी कोई पाप नहीं किया और न कभी किसी की निन्दा की। श्रीभगवान् ने सम्पूर्ण गीता में इन दो नामों से अर्जुन को अधिक बुलाया। हे निष्पाप अर्जुन! इस प्रकार मैंने तुम्हें गुह्य, गुह्यतर और गुह्यतम ज्ञान दिया है, यह गुह्तम शास्त्र कहा है। इस अध्याय की इतनी महिमा है कि इसको शास्त्र की उपमा दी गई है, क्योंकि श्रीभगवान् ने स्वयं के मुख से इसे शास्त्र कह दिया।

अगर केवल एक ही अध्याय पढ़ना हो, किसी की मृत्यु पर, भोजन करते समय, किसी के जन्म लेने अथवा किसी मङ्गल प्रसङ्ग में पढ़ना हो तो, वह यही है। थोड़ा समय है और एक अध्याय पढ़ना हो तो इस अध्याय को पढ़ लें। यह अत्यन्त रहस्यमयी गोपनीय शास्त्र मेरे द्वारा कहा गया है। इसको तत्त्व से जानकर ज्ञानवान पुरुष कृतार्थ हो जाता है और अपने परम पद को प्राप्त कर लेता है। यही जानना मनुष्य जीवन का सर्वोच्च लक्ष्य है, यह कहकर श्रीभगवान् इस अध्याय को पूर्ण करते हैं।

हरि नाम सङ्कीर्तन के साथ सत्र का समापन हुआ।

विचार- मन्थन (प्रश्नोत्तर)-
प्रश्नकर्ता- शंकर जी
प्रश्न - आपने गीता जी पठन, अभ्यास के साथ अन्तःकरण को शुद्ध करने का प्रयास करने के लिए बताया। कैसे करें बताइए?
उत्तर - गीता जी के पठन के अभ्यास के साथ हमें व्यवहार में लाने का सतत प्रयास करना होगा। हम महाकुम्भ में स्नान करते हैं, गङ्गा जी में डुबकी भी लगाते हैं। पूजा-पाठ भी करते हैं। ग़लती क्या होती है इसके बाद हम शुद्धिकरण का हमारा कार्य श्रीभगवान् पर छोड़ देते हैं। श्रीभगवान् इसमें कुछ नहीं करते हैं। हम अपने व्यवहार में बदलाव लाते हैं क्या? अपने व्यवहार में बदलाव हमें स्वयं को लाना है। जब तक हमारे अन्दर झूठ, कपट, षडयन्त्र, कामनाओं का निवास रहेगा, तब तक हमारा अन्तःकरण शुद्ध नहीं होगा। हमें परमात्मा की अनुभूति भी नहीं होगी, इसलिये हमें सतत अभ्यास से अपने स्वभाव में परिवर्तन लाना होगा। जब आपके आस पास वाले लोग आपको चाहने लग जाए, आपसे मिलकर प्रसन्नता का अनुभव करने लगें तब आप समझिए कि परिवर्तन होना आरम्भ होने लगा है।

प्रश्नकर्ता- ऊषा जी
प्रश्न - मैं अभी **स्तर 4(Level 4)** में हूँ। मैं फिर से **स्तर 1(Level 1)** में कैसे **ज्वाइन (Join)** सकती हूँ।
उत्तर - आप किसी भी माध्यम से **लर्नगीता ऐप (learngeeta App)** से, फॉर्म भर कर या **हेल्पलाइन (Helpline # 1800 203 6500)** द्वारा भी ज्वाइन (Join) सकते हैं।

प्रश्न- प्रयागराज महाकुम्भ में हमारा गीता परिवार का स्टॉल कौन से सैक्टर में लगा है।
उत्तर - प्रयागराज महाकुम्भ में **गीता परिवार का स्टॉल सैक्टर 8 (Sector 8)** में **श्रीदुर्गा जी मन्दिर, लखनऊ** का एक पण्डाल बनाया गया है। उसी में स्थापित एक स्टॉल से गीता परिवार के कार्यकर्ता प्रचार -प्रसार कर रहें हैं।
।। ॐ श्रीकृष्णार्पणमस्तु।।

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासु उपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां(यँ) योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे पुरुषोत्तमयोगो नाम पञ्चदशोऽध्यायः॥

इस प्रकार ॐ तत् सत् - इन भगवन्नामों के उच्चारणपूर्वक ब्रह्मविद्या और योगशास्त्रमय श्रीमद्भगवद्गीतोपनिषदरूप श्रीकृष्णार्जुनसंवाद में 'पुरूषोत्तमयोग' नामक पन्द्रहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ।

हमें विश्वास है कि आपको विवेचन की रचना पढ़कर अच्छा लगा होगा। कृपया नीचे दिए लिंक का उपयोग करके हमें अपनी प्रतिक्रिया दीजिए।

https://vivechan.learngeeta.com/feedback/

विवेचन-सार आपने पढ़ा, धन्यवाद!
हम सब गीता सेवी, अनन्य भाव से प्रयास करते हैं कि विवेचन के अंश आप तक शुद्ध वर्तनी में पहुंचे। इसके बाद भी वर्तनी या भाषा संबंधी किन्हीं त्रुटियों के लिए हम क्षमा प्रार्थी हैं।

जय श्री कृष्ण !

संकलन: गीता परिवार - रचनात्मक लेखन विभाग

हर घर गीता, हर कर गीता!

Let’s come together with the motto of Geeta Pariwar, and gift our Geeta Classes to all our Family, friends & acquaintances

https://gift.learngeeta.com/

गीता परिवार ने एक नवीन पहल की है। अब आप पूर्व में सञ्चालित हुए सभी विवेचनों कि यूट्यूब विडियो एवं पीडीऍफ़ को देख एवं पढ़ सकते हैं। कृपया नीचे दी गयी लिंक का उपयोग करे।

https://vivechan.learngeeta.com/

|| गीता पढ़े, पढ़ायें, जीवन में लाये ||
||ॐ श्रीकृष्णार्पणमस्तु ||